साहित्य शिक्षण का उद्देश्य और विधि

अर्चना शर्मा*

भारत की वर्तमान शिक्षण पद्धति परीक्षा-केंद्रित होकर ही रह गई है, जिसमें साहित्य के शिक्षण का उद्देश्य भी मात्र परीक्षाओं में अच्छे अंक लाकर रोज़गार प्राप्त करने तक सीमित हो गया है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि छात्रों में स्वतंत्र चिंतन शक्ति और सृजन क्षमता का ह्रास होता जा रहा है। साहित्य जीवन के किसी एक पक्ष से ही हमें अवगत नहीं कराता बल्कि उसके विविध पहलुओं को उजागर कर हमारे सम्मुख रखता है। साहित्य शिक्षण का उद्देश्य केवल साहित्यक सूचनाओं का आदान-प्रदान ही न होकर, विद्यार्थियों में आधारभूत गुणों के विकास के साथ-साथ उनमें अपने और दूसरों के जीवन मूल्यों को समझना भी होना चाहिए। साहित्य हमें जीवन की विशालता, विविधता और परिवर्तनशीलता से भी परिचित कराता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि साहित्य की शिक्षा परीक्षा-केंद्रित न होकर विद्यार्थी के व्यक्तित्व विकास में भी सहायक हो। विद्यार्थी को साहित्य से जोड़ने में शिक्षक की रचनाशीलता बहुत महत्वपूर्ण है। वह संवाद, चर्चा, आपसी बातचीत आदि के द्वारा विद्यार्थी में स्वतंत्र चिंतन शक्ति का विकास कर सकता है।

हमारी शिक्षा पद्धति मुख्य रूप से दो आधारों पर टिकी है - अध्यापक द्वारा विद्यार्थियों को पूर्वनिर्धारित पाठ्यक्रम के सहारे परीक्षा के लिए तैयार करना, और सत्रांत में तीन घंटे की परीक्षा में उस तथाकथित प्राप्त जानकारी की एकमुश्त जाँच कर लेना। शिक्षा के नाम पर इतना भर काफी माना जाता है। विषय चाहे साहित्य हो या विज्ञान। परीक्षा में प्राप्त अंकों को शिक्षण की गुणवत्ता का और बाद में नौकरी के लिए उस विषय की प्रासंगिकता का प्रमाण मान लिया जाता है। इस प्रक्रिया में हम देख नहीं पाते कि हम विद्यार्थी को वास्तव में किस चीज़ की शिक्षा दे रहे हैं या किस चीज़ की परीक्षा ले रहे हैं, और साथ ही, स्वयं विद्यार्थी उससे क्या प्राप्त कर रहा है, या फिर नहीं ही कर रहा है।

हमारी लगभग सारी शिक्षा शब्दों के माध्यम में होती है। शब्द तीन प्रकार का संप्रेषण कर सकते हैं - (i) सर्वथा निश्चित संप्रेषण जहाँ शब्दों का अर्थ सबके लिए वही होता है। यह केवल गणित और शुद्ध विज्ञान में ही संभव है। (ii) सामान्य समझ (कॉमनसैंस) पर आधारित संप्रेषण जिससे हमारे दैनिक जीवन का व्यापार चलता है, और जो अनादि काल से मनुष्य समाज में चलता आया है। यहाँ समाज-स्वीकृत शब्दों

**असिस्टेंट प्रोफ़ेसर*, जीसस एंड मैरी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

का अर्थ चलता है, उनकी सही व्याख्या की कोशिश नहीं की जाती। हमारी जानकारी प्राय: इसी प्रकार के संप्रेषण से हमें मिली होती है। विज्ञान का विकास इन्हीं में से कुछ शब्दों को मापनीय बनाकर निश्चित अर्थ देने से होता है। (iii) अनुभूति प्रधान संप्रेषण जहाँ शब्दों का अर्थ अनिश्चित होता है और उसे निश्चित करने का कोई उपाय भी नहीं होता।

साहित्य के सृजन और उसके शिक्षण का उद्देश्य केवल साहित्य-संबंधी सूचनाओं का आदान-प्रदान मात्र नहीं है। साहित्य का स्वरूप अन्य विषयों से बहुत भिन्न है। यह मुख्य रूप से रचनाकार के अनुभूति जगत् से जुड़ा है और इसका संबंध मनुष्य जीवन के आंतरिक और बाह्य सभी पक्षों से है। इसलिए साहित्य के शिक्षण की अपेक्षाएँ और समस्याएँ भी अन्य विषयों से बहुत भिन्न होंगी। आज शिक्षा का उद्देश्य अधिक से अधिक जानकारी देने और हासिल करने तक सिमट गया है। पर साहित्य पढ़ने-पढ़ाने का उद्देश्य इससे पूरी तरह भिन्न है। साहित्य जीवन का आकलन होने के नाते अनेक विषयों को अपने में समेटे हुए होता है।

दर्शन, धर्म, मनोविज्ञान, इतिहास, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र आदि सभी विषय रचनाकार के अनुभूति-जगत् के समानांतर साहित्य के आलंबन हैं। इसलिए साहित्य का अध्ययन वस्तुत: केवल रचना-विशेष का अध्ययन नहीं होता बल्कि समग्र जीवन का अध्ययन होता है।

शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में शब्दों के प्रयोग का धरातल भिन्न होता है। गणित, विज्ञान, भूगोल आदि विषय तथ्य-प्रधान हैं जिनमें निजी अनुभूति का कोई स्थान नहीं है। ऐसे विषयों में शब्दों का अर्थ सदा एक-सा होने के कारण उनमें भ्रम या संदेह की कोई गुंज़ाइश नहीं होती। उनके अर्थ देश और काल के आधार पर नहीं बदलते। इसके ठीक विपरीत, साहित्य अर्थ की अनंत संभावनाओं को साथ लेकर चलता है। एक ही कविता का अर्थ अलग-अलग पाठकों के लिए अलग-अलग हो सकता है, और एक ही पाठक के लिए अलग-अलग समय पर वह अर्थ बदल भी सकता है। साहित्य के विद्यार्थी के लिए साहित्य में और अन्य विषयों में इस मूल अंतर को समझना अत्यंत आवश्यक है। साहित्य के एक सामान्य पाठक और एक गंभीर पाठक में इसी ग्रहण-क्षमता के आधार पर अंतर होता है। सामान्य पाठक किसी भी रचना को एक ही स्तर पर पढ़कर संतुष्ट रहता है जबकि एक गंभीर पाठक को प्रत्येक कृति अनेक स्तरों पर अर्थ देती है।

साहित्यकार अपनी रचना के माध्यम से पाठक के साथ संवाद स्थापित करना चाहता है। संप्रेषण उसका मुख्य लक्ष्य है। किंतु जहाँ तक साहित्य में जीवन की सामान्य अनुभूतियों की बात होती है अथवा कवि का आंतरिक जगत् दूसरों के आंतरिक जगत् से मेल खाता है, वहाँ तक संप्रेषण में कोई कठिनाई नहीं आती। सामान्य कथा-साहित्य इसका उदाहरण है। किंतु अनुभवों की जटिलता अभिव्यक्ति की शैली को भी प्रभावित करती है। इससे उसके संप्रेषण में भी कठिनाई आती है। यही कारण है कि हर गंभीर साहित्यकार अपने पाठक में एक विशिष्ट साहित्यक संस्कार की अपेक्षा रखता है।

संप्रेषण के सामान्य तत्व के आधार पर किसी भी रचना को कक्षा-शिक्षण का विषय बनाया जा सकता है। किंतु वास्तविक समस्या तब आती

है जब कोई भी साहित्यिक कृति पाठ्यक्रम में पहुँचते ही एक पाठ्यपुस्तक बन जाती है, जिसे पढ़ा नहीं जाता बल्कि अध्यापक द्वारा पढ़ाया जाता है। उनपर पूछे जाने वाले प्रश्नों की एक पूर्व निश्चित फ्रेम के अंतर्गत उत्तर की अपेक्षा की जाती है। हमारी सारी शिक्षा परीक्षा-केंद्रित हो गई है इसलिए एक ओर विद्यार्थियों की अध्यापक पर निर्भरता अधिकाधिक बढ़ती जाती है, और उनमें कभी भी स्वतंत्र चिंतन का आत्मविश्वास जागृत नहीं हो पाता, तो दूसरी ओर अध्यापक भी परीक्षा के आतंक से पीड़ित रहकर अपना पूरा ध्यान विद्यार्थी को अच्छे अंकों से उत्तीर्ण करवाने के प्रयास में लगाते हैं, जिसमें उनका स्वयं नोट्स तैयार करना और उन्हें विद्यार्थियों को लिखवाना भी शामिल है। हम विद्यार्थियों को इस विषय में जागरूक नहीं करवा पाते कि कविता में (वैसे सामान्य जीवन में भी) शब्दों का अर्थ प्रत्यक्ष का नहीं अनुमान का विषय है। हम केवल अनुमान करते हैं कि कवि क्या कहना चाहता है। हमारे पास इसके अलावा और कोई चारा नहीं है।

भर्तृहरि तथा अन्य प्राचीन भारतीय भाषा दार्शनिकों ने भाषा पर चर्चा करते हुए कहा है कि हम शब्द का विश्लेषण कर सकते हैं क्योंकि वह देश-काल में है किंतु उसका अर्थ सदा पकड़ से बाहर रहता है क्योंकि वह देश-काल की सीमा के बाहर है। भाषा के संबंध में यह एक आधारभूत तथ्य है जो सभी भाषाओं पर समान रूप से लागू होता है। साहित्य के विद्यार्थी का इस बारे में सचेत होना विशेष रूप से आवश्यक है। कविता में शब्द अनेक अर्थ-छायाओं से युक्त होते हैं। एक ही कविता को पढ़ने से अलग-अलग पाठकों की अनुभूतियाँ अलग-अलग हो सकती हैं और ये अनुभूतियाँ उसी रचना के बाद के पाठ से बदल भी सकती हैं। यह भी संभव है कि इनमें से कोई भी अर्थ कवि के अपने अर्थ से मेल न खाता हो। इस विरोधाभास को हल करने का कोई उपाय नहीं है।

साहित्य-शिक्षण का एक मुख्य उद्देश्य छात्रों में सृजन और चिंतन की क्षमता का विकास करना होना चाहिए। वर्तमान परीक्षा प्रणाली के रहते हुए यह लगभग असंभव है। जब हज़ारों छात्रों को परीक्षा भवन में एक ही कविता के किसी अंश की व्याख्या या कवि-केंद्रित किसी प्रश्न का उत्तर लिखना हो, और परीक्षकों को मुख्य-परीक्षक द्वारा दिए गए 'मॉडल स्तर' के अनुसार उत्तर पुस्तिकाएँ जाँचनी हों तो परीक्षार्थियों को उस कवि अथवा कविता के बारे में अपने विचार व्यक्त करने का अवसर नहीं रहता।

पढ़ाई के दौरान छात्र जानना चाहते हैं कि परीक्षा में कौन-से प्रश्न पूछे जाएँगे और उनके क्या उत्तर होंगे। वे बहुत बार मूल पुस्तक पढ़ने की बजाय कुंजियाँ पढ़ना पसंद करते हैं। कई कक्षाओं में साहित्य का शिक्षण कुंजी-आधारित होता है। पिछले वर्षों के प्रश्न-पत्र देखकर उनके अनुसार तैयारी करना साहित्य की पढ़ाई का आवश्यक अंग हो गया है। साहित्य हमें जीवन की विशालता, विविधता और परिवर्तनशीलता से परिचित कराता है। हमारा जीवन कभी भी पिछले वर्ष के प्रश्न लेकर सामने नहीं आता। साहित्य हमें केवल आनंद ही नहीं देता, वह जीवन को समझने में हमारी सहायता भी करता है। अन्यथा समय के इतने लंबे अंतराल के बाद भी *महाभारत* की इतनी प्रासंगिकता नहीं होती।

आज की जीवन-संस्कृति में जहाँ केवल प्रतिस्पर्धा है, दूसरे से आगे निकलने की होड़ है, वहाँ विद्यार्थियों को साहित्य क्यों पढ़ाया जाए यह भी एक गंभीर प्रश्न है। शिक्षा का व्यावहारिक उद्देश्य विद्यार्थियों को रोज़गार के लिए तैयार करना है, इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता, किंतु साहित्य के अध्ययन का इस व्यावहारिक उद्देश्य से अलग भी महत्त्व है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

साहित्य के पठन का एक प्रमुख लाभ हमारी चेतना का विकास है। हम अपने ही जीवन से नहीं सीखते, अपने परिवार और पड़ोस के अन्य लोगों के जीवन से भी सीखते हैं। साहित्य के माध्यम से सारा संसार ही हमारा पड़ोस बन जाता है। विभिन्न प्रकार के साहित्य के अध्ययन से हमें अपने आपको और अपने चारों ओर के समाज को नयी-नयी दृष्टियों से देखने का अवसर मिलता है। छात्रों को अपने और दूसरों के जीवन को देखने-समझने में सहायता देना साहित्य-शिक्षण का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि छात्रों के पठन को पाठ्यपुस्तकों तक सीमित रखने की बजाय उसे अधिक से अधिक विशाल बनाया जाए। हिंदी के छात्रों को हिंदी के साहित्य के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं और विदेशी भाषाओं के साहित्य को पढ़ने के लिए भी प्रेरित किया जाना चाहिए।

यह एक ज्ञात तथ्य है कि कॉलेज में दाखिले के समय हिंदी का चुनाव बहुत से छात्रों के लिए प्रायः एक विकल्पहीन विवशता का फैसला होता है। हिंदी का विद्यार्थी उस 'विशेष संस्कारी पाठक' के रूप में हमारे पास नहीं आता जिसकी अपेक्षा की जाती है। किंतु साहित्य-संस्कार के इस 'कठिन-दुस्तर मार्ग' पर छात्र को आगे ले जाना ही वास्तव में शिक्षक की सफलता है। इसके लिए आवश्यक है कि अध्यापक भी अपनी पारंपरिक सोच से बाहर निकले और अपने व्यवसाय के विषय में कुछ नए और मौलिक ढंग से विचार करे।

साहित्य के बीच हर व्यक्ति में होते हैं– कहीं कम, कहीं ज़्यादा। आवश्यकता उनके पल्लवित होने के लिए उचित वातावरण प्रदान करने की है। यह अध्यापक की रचनाशीलता पर निर्भर करता है कि वह कैसे अपने विद्यार्थियों को साहित्य से जोड़ता है। विद्यार्थियों के साथ मिलकर कुछ पढ़ना, चर्चा और बातचीत के ज़रिये उसमें से कुछ मुद्दे निकालकर उन पर विचार करना -विद्यार्थियों के साथ एक आरंभिक संवाद बनाने में मदद करता है। साहित्य के अध्ययन में पठित विषय पर विद्यार्थियों की अपनी राय बनना आवश्यक है। इसलिए विद्यार्थियों को शब्दार्थ सहित पंक्ति-दर-पंक्ति व्याख्या और बने बनाए उत्तरों की बैसाखी नहीं दी जानी चाहिए। जिसमें हम उनका हित समझ-कर करते हैं, उसी से उनका सर्वाधिक अहित होता है।

कहानियों को पढ़ाते हुए यदि हम role play model को अपनाएँ तो विद्यार्थियों के सामने अनेक अर्थ खुद-ब-खुद खुलते चले जाएंगे। एक कहानी को उसी कहानी के किसी अन्य पात्र के नज़रिये से पढ़ने का प्रयास उनकी सोच को और अधिक खोलेगा। किसी कहानी का नाट्य-रूपांतर या नाटक की कहानी में रूपांतर ऐसी क्रियाएँ हैं जिनमें छात्र जितनी बार कहानी पढ़ेंगे, उन्हें कुछ नया मिलेगा और वे आनंदित भी होंगे। काव्य पाठ, कविताओं की अंत्याक्षरी ऐसी क्रियाएँ हैं

जो छात्रों के मन में कविताओं के अर्थ के स्वत: खुलने में मदद करती हैं।

साहित्य जीवन का प्रतिबिंब है, इसलिए उसमें कुछ भी ऐसा नहीं है जो हमारे जीवन से बाहर है। जीवन को समझने और उसका सामना करने में साहित्य हमारी सबसे अधिक सहायता करता है। जीवन के विविध पक्षों का परिचय हमें साहित्य से भी मिलता है। साहित्य में उठ रहे दलित एवं स्त्री विमर्श, स्त्री-पुरुष संबंध, परिवार, राजनीति, भ्रष्टाचार, शोषण, धर्म और जाति की समस्याएँ आदि सभी प्रश्न वर्तमान समय में अत्यंत प्रासंगिक हैं। रचनाओं को आधार बनाकर कक्षा में उनसे उठने वाले प्रश्नों पर खुली चर्चा होनी चाहिए। उन्हें केवल परीक्षा की दृष्टि से नहीं देखा जाना चाहिए।

कुछ अच्छे नाटक तथा कुछ अच्छी फ़िल्में दिखाकर उनके माध्यम से विद्यार्थियों को साधारणीकरण, काव्यानुभव, रस का स्वरूप, रंगमंचीयता आदि की व्यावहारिक जानकारी सहज ही दी जा सकती है।

यू.जी.सी. के सहयोग से होने वाले सेमिनारों में विद्यार्थियों की भी रचनात्मक सहभागिता होनी चाहिए। अभी इस फ़ोरम में अधिकांशत: अध्यापक अपनी पदोन्नति के लिए पर्चा पढ़ते हैं। छात्रों की उपस्थिति उनमें प्राय: नगण्य होती है।

हम निरंतर एक ऐसे भविष्य की ओर बढ़ रहे हैं जहाँ अपनी परंपरा से हमारा अपरिचय बढ़ता जा रहा है। ''पुराणिमित्येव असाधुसर्वम'' आज का मूल मंत्र बन गया है। रचनाशीलता के धरातल पर हो या साहित्य के सिद्धांतों के धरातल पर - विदेशी प्रभाव का अनुपात लगातार बढ़ रहा है। विद्यालय स्तर पर ही आठवीं कक्षा के बाद हिंदी वैकल्पिक विषय बना दी गई है जिसके कारण तथाकथित प्रगतिशील (progressive) कहे जाने वाले विद्यालयों में संपन्न परिवारों के अधिकतर छात्र आठवीं कक्षा के बाद हिंदी छोड़ देते हैं। इसी प्रकार पहले हमारे विद्यालयों में सभी छात्रों को संस्कृत किसी न किसी रूप में पढ़ाई जाती थी। आज संस्कृत और विदेशी भाषा में चुनाव की सुविधा दे दी गई है। परिणामत: हमारे बच्चे अपनी परंपरा और अपने परिवेश से कटते जा रहे हैं। वह पीढ़ी धीरे-धीरे समाप्त हो रही है जो यह जानती थी कि संस्कृत के ज्ञान के बिना हम भारतीयों का व्यक्तित्व अधूरा है। परंपराविहीन नीतिज्ञ हमारी शिक्षा-नीति (भाषा-नीति) बनाने में लगे हैं जिसका दुष्प्रभाव हमें सब जगह दिखाई देता है। हिंदी साहित्य के शिक्षण की वर्तमान दशा पर विचार केवल हिंदी साहित्य के शिक्षण तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए बल्कि उसके पीछे छिपे कारणों की तह में भी जाना चाहिए।

अंत में, ऊपर कही बातों को तब तक क्रियान्वित नहीं किया जा सकता जब तक हमारी परीक्षा प्रणाली में आमूल परिवर्तन न हों। जब तक साहित्य की परीक्षा सूचना-आधारित विषय के रूप में होती रहेगी, वर्तमान स्थिति के बदलने की संभावना नहीं के बराबर है। एक अनुभूति प्रधान विषय की परीक्षा सूचना-प्रधान विषयों की तरह नहीं ली जा सकती। साहित्य की परीक्षा-विधि क्या हो इस पर गंभीर विचार आवश्यक है।

(भारत संधान, अंक-15, अक्तूबर 2012 से साभार)